जीवनदान

(1)

पूजन की सामग्री हाथ में लिये हुए बहुत से सेठ लोग आगे बढ़ते चले जा रहे हैं और बहुत से भक्त वापस आ रहे हैं। यह देखकर मृगसेन धींवर भी उधर ही बढ़ा, आगे देखता है एक महामुनिराज मध्य में विराजमान हैं। भक्त लोग उनकी भक्ति में तत्पर हैं। मध्य-मध्य में समय पाकर लोग मुनिराज से कुछ नियम-व्रत भी ग्रहण कर रहे हैं। मृगसेन दूर से खड़ा-खड़ा देख रहा है, उसके कंधे पर जाल पड़ा हुआ है। वह सोच रहा है 'ऐसे मुनियों के दर्शन करके मैं भी क्यों न अपने जन्म को सफल कर लूँ।' वहीं पर एक तरफ अपने कंधे पर से जाल को उतार कर रख देता है और गुरु के निकट आकर उन्हें नमस्कार कर एक तरफ बैठ जाता है। अवकाश देखते ही निवेदन करता है–

"हे गुरुदेव! मुझे भी कोई व्रत दीजिये।"

मुनिराज मन में सोचने लगे–'बगुले की तरह मछलियों को मारने में तत्पर ऐसा यह धीवर इसका मन आज व्रत धारण करने के लिए कैसे हो रहा है? लोक में यह किंवदन्ती

प्रसिद्ध है कि भविष्य में होने वाले शुभ या अशुभ के बिना प्राणियों का स्वभाव नहीं बदलता है।' ऐसा सोचते ही मुनिराज ने अपने दिव्य अवधिज्ञान से समझ लिया कि यह निकट संसारी है। जल्द ही संसार के दुःखों से छुटकारा पाने वाला है और इसकी आयु भी अब कुछ ही शेष बची है। वे बोले–

"भद्र! तुमने बहुत अच्छा सोचा है, तुम ऐसा नियम ग्रहण करो कि 'आज तुम्हारे जाल में सबसे प्रथम जो मछली आयेगी, उसको जीवनदान दे देना' तथा 'जब तक तुम्हें अपने हाथ में जीविकारूप मांस प्राप्त न हो तब तक के लिए मांस का त्याग कर दो।' और

'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।'

इस पैंतीस अक्षर के महामंत्र को हमेशा जपते रहना 'सुख में हो या दुःख में' यह मंत्र हमेशा तुम्हारी रक्षा करेगा।"

"जो आज्ञा गुरुदेव", ऐसा कहकर गुरु के कहे अनुसार नियम को ग्रहण कर मृगसेन प्रसन्नचित्त होकर गुरु को नमस्कार करता है और पुनः उठकर अपना जाल उठाकर कंधे पर रखकर अपने गन्तव्य की ओर चल देता है। क्षिप्रा नदी के किनारे पहुँचकर प्रतिदिन के समान नदी में जाल बिछाकर बैठ जाता है। कुछ ही क्षण में एक बड़ी-सी मछली जाल में फँस जाती है। वह सोचता है कि आज मुझे इस मछली को मारना नहीं है चूँकि महामुनि ने मुझे व्रत दिया है। शीघ्र ही वह अपने वस्त्र का किनारा फाड़कर उस चिन्दी

को उसके गले में बाँध देता है और उसे वापस नदी में छोड़ देता है। उसके हाथ में छटपटाती हुई वह मछली कुछ ही क्षणों में अपने प्राणों के आधारभूत जल को प्राप्त कर उसी में तैरने लगती है। सच है, जीवन से बढ़कर अन्य और कोई वस्तु इस विश्व में नहीं है। जिसने किसी को जीवनदान दिया उसने उसे सब कुछ दिया और जिसने किसी का जीवन हर लिया, उसने उसका सब कुछ हर लिया।

मृगसेन उसी स्थान में उस मछली को छोड़कर पुनः उठकर अपना जाल लेकर नदी पर कुछ दूर जाकर बैठ जाता है और पुनः उस किनारे पर जाल बिछा देता है। कुछ देर बाद उसके जाल में एक मछली पुनः फँस जाती है। जाल उठाकर देखता है तो उसके गले में वही वस्त्र की चिन्दी बंधी हुई है। सोचता है यह मछली तो पहली बार जाल में आई थी। कुछ भी हो, इसका घात अपने को नहीं करना है। इसे जीवनदान देना ही है। बस! उसने उसे पुनः वहीं जल में छोड़ दिया और जाल उठाकर कुछ दूर जाकर पुनः बिछा दिया। ऐसे ही शाम होने तक वही मछली पाँच बार उसके जाल में आती है और पांचों ही बार वह उसे नदी में छोड़ देता है और अंत में खाली हाथ घर वापिस लौट आता है। घंटा नाम की उसकी स्त्री उसे खाली हाथ आया देखकर झुँझला उठती है और बकना शुरू कर देती है–

"अरे मूर्ख! तू आज खाली हाथ कैसे आ रहा है? अब क्या पत्थर खायेगा?"

"मैंने आज एक दिगम्बर मुनि के पास एक नियम

लिया है कि जो मछली पहले जाल में फँसे उसे–" बीच में ही बात काटकर वह बोलने लगती है।

"बस बस, उसी नंगे के पास जा, दिनभर बैठा रह, तेरा पेट भर जायेगा।"

"अरी सुन तो सही, मैं दिन भर वहीं नहीं था, नदी पर ही गया और जाल भी डाला था।"

"फिर क्या हुआ?"

"मैंने तो यह नियम लिया था कि सबसे पहले जो मछली जाल में आये उसे नहीं मारना।"

"तो क्या दिनभर मछली नहीं फँसी?"

"हाँ, मैं क्या करूँ? दिनभर वही मछली आती गई।"

"यह वही है, ऐसा तूने कैसे जाना?"

"मैंने जो उसके गले में कपड़े की चिन्दी बाँध दी थी।"

"अरे निर्बुद्धे! मुझे तो भूख लगी है, अब क्या खाऊँ?"

ऐसा बकते-झकते वह तो झोंपड़ी में घुस गई और दरवाजा बंद करके अंदर से साँकल लगा ली। मृगसेन बेचारा जब घर में नहीं जा सका, तब वह एक तरफ जाकर पंचनमस्कार मंत्र को जपने लगा। उसे भूख भी लग रही थी, किन्तु "आज मैं पुण्यशाली हूँ जो कि गुरु के द्वारा दिया हुआ नियम पाल रहा हूँ" ऐसा सोचकर संतुष्ट था। पास में पुराने वृक्ष की जड़ फैली हुई थी उसी को तकिया बनाकर धरती में लेट गया और गहरी नींद सो गया, परन्तु बेचारा ऐसा सोया कि फिर वापस उठा ही नहीं। उस वृक्ष की जड़ बहुत दूर तक खोखली थी उस में से एक साँप निकला, उसने उसे काट लिया। नमस्कार

मंत्र जपते-जपते वह सोया था, व्रत पालन के प्रति भी उसका बहुत ही आदर था तथा उस दिन उसको मछली न मिल सकने से माँस भोजन का भी त्याग हो गया था।

घंटादेवी सुबह दरवाजा खोलकर बाहर निकलती है, इधर-उधर देखती है कि पतिदेव कहाँ चले गये? सहसा उसकी दृष्टि एक तरफ वृक्ष के नीचे पहुँचती है। ओह! अभी तक यह सो रहा है, इसे आज की कुछ चिंता नहीं, फिर वापस उसका पारा चढ़ जाता है, धीरे-धीरे उधर बढ़ती है और झुँझला कर बोलती है–

"क्या अभी तक भोर नहीं हुआ?"

प्रातःकाल की सुषमा अपनी लालिमा बिखेरते हुए मानो उसको हँसा रही है, वह पुनः चिल्लाने लगती है–

"अरे उठ तो, अब तो भूख के मारे मैं मर रही हूँ, जा जा आज जल्दी से कुछ लेकर आ।" फिर भी कुछ उत्तर नहीं मिलता है और न करवटें ही बदलता है तब वह घंटादेवी आगे बढ़कर देखती है कि उसकी भुजा से खून की धारा बही हुई है और चींटियाँ उधर को रेंगती चली जा रही हैं। धीरे से उसके मुँह पर का ढका हुआ कपड़ा अलग करती है तो यह क्या? उसमें तो श्वास नहीं है। घबड़ाकर जोर-जोर से रोने लगती है। उसका करुण क्रन्दन सुनकर कुछ पड़ौसी इकट्ठे हो जाते हैं–

"अरे रे! आज यह कैसे सोया था?"

"तुझे मालूम नहीं क्या? इसकी औरत बहुत ही कर्कशा है, उसने घर से निकाल दिया होगा?"

"कौन जाने बाबा? वह तो बेचारा मर गया।"

"चलो, चलो उसका क्रिया कर्म तो करा दो। हाँ, देखो ना बेचारी घंटादेवी कैसी बिलख रही है।"

"यह तो इतनी मूर्ख है कि अपना पेट भी नहीं भर सकती।"

इसी बीच में कुछ लोग उससे पूछते हैं–

"बता तो सही, क्या हुआ? कल कुछ झगड़ा हुआ था क्या?" पुनः बीच में एक वृद्ध सज्जन आकर बोलते हैं–

"भाई! अब क्या पूछना? वह तो मरा पड़ा है। कफन लाओ, इसकी चिता तैयार कराओ।"

लोग मिलकर शव को चिता में रखकर उसमें आग लगा देते हैं। इसी मध्य घंटा आकर बोलती है–

"जो मेरे पति का नियम था वही नियम मेरा भी होये और अगले भव में भी यही मेरा पति होये।" ऐसा कहकर उसमें कूदने लगती है, लोग हल्ला मचाने लगते हैं–

"अरे अरे, यह क्या? तू क्यों मर रही है?"

"रोको, रोको, पकड़ो, दौड़ो जल्दी।"

"बाई सुन तो, उसकी आयु पूरी हो गई, मर गया। अब तू शांति रख।"

बहुत कुछ हल्ला-गुल्ला होने पर भी वह घंटा उसी चिता में कूद पड़ती है और देखते-देखते कुछ ही क्षण में भस्मसात् हो जाती है। लोग तरह-तरह की चर्चा करते हुए अपने-अपने घर चले जाते हैं–

"बेचारी औरत बहुत ही अच्छी थी, देखो ना, पति के

साथ अपना जीवन समाप्त कर दिया।''

''इसने अंत में कहा था' जो पति का नियम था वो ही मेरा भी हो' सो क्या था?''

''कौन जाने? उसे बताये भी कौन? बेचारी मर गई।''

''इसे बहुत अच्छी गति मिलेगी।''

''हाँ, जैसी कुछ ईश्वर की मर्जी होगी।''

''इस मृगसेन ने कुछ न कुछ नियम जरूर निभाया है, ऐसा मालूम पड़ता है।''

''इसीलिए तो इन दोनों का परलोक सुधर गया, ऐसा मालूम पड़ता है।''

(2)

''बहुत शांतचित्त होकर आये हुए संकट का सामना करना है। आखिर आपकी समझ में क्या आता है? क्या करना चाहिए?''

''आप स्वयं बुद्धिमान हैं। आप जैसी आज्ञा दें, मुझे स्वीकार है।''

''मेरी समझ में तो अब हर हालत में अपने को यह विशाला नगरी छोड़नी ही पड़ेगी।''

''जब राजा स्वयं विटपुरुषों का प्रेमभाजन बना हुआ है, विवेकशून्य है और नर्मभर्म विदूषक के पुत्र नर्मधर्म के लिए अपनी पुत्री की याचना कर रहा है, ऐसे राज्य में अपने कुल की रक्षा कैसे हो सकती है?''

''कहाँ अपनी पुत्री सुबंधु, एकमात्र धर्म की मूर्तिस्वरूप

और कहाँ वह विदूषक का लड़का दुर्व्यसनी। यदि उसको हम अपनी पुत्री दे देंगे तो निश्चित ही अपनी कुल परम्परा नष्ट हो जायेगी और चारों तरफ अपवाद भी फैल जायेगा।''

''भला, सुबन्धु इन दुष्टों की नजर में पड़ी कैसे?''

''सुना है किसी दिन वह जिनमंदिर जा रही थी, मार्ग में इन लोगों के समूह ने उसे देख लिया। पता चलाया कि वह किसकी लड़की है। बस उसके बाप ने राजा से प्रार्थना की।''

''अब तो एक निर्णय कीजिये और आज्ञा दीजिये। मेरी चिंता आप बिल्कुल न कीजिये। इस समय अपनी पुत्री की सुरक्षा करना आपका परम कर्त्तव्य है।''

''किन्तु प्रिये! आपकी यह अवस्था, न इधर-उधर आपको ले जाया जा सकता और न मैं आपको यहाँ कहीं छोड़कर जाना ही उचित समझता हूँ क्या करूँ? समस्या जटिल है।''

बेचारे सेठ गुणपाल राजा विश्वम्भर के आकस्मिक समाचार से अत्यधिक चिंतित हैं। दीर्घ निःश्वास छोड़कर अंत में निर्णय देते हैं–

''आप मेरे परम मित्र श्रीदत्त सेठ के यहाँ रहिये, चूँकि गर्भवती अवस्था में मेरे साथ प्रवास कैसे बनेगा? मैं पुत्री सुबंधु को लेकर कौशांबी देश की तरफ जा रहा हूँ। न होगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। जब मैं ही यहाँ नहीं होऊँगा तब वह किसका क्या बिगाड़ेगा अन्यथा सर्वस्व हरण व प्राणदंड भी दे सकता है। चूँकि मैं अपने जीते जी कन्या को ऐसे विदूषक पुत्र के साथ तो नहीं विवाहूँगा।''

दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई धनश्री अंत में कुछ भी उपाय

न देखकर पति की आज्ञा शिरोधार्य करती है और पुत्री को लेकर पति को कौशांबी जाने की स्वीकृति प्रदान करती है। गुणपाल सेठ भी अपने परम मित्र श्रीदत्त के यहाँ धनश्री पत्नी को छोड़कर आप अपनी अतुल सम्पत्ति और कन्या सुबन्धु को साथ लेकर गुप्तरीति से कौशाम्बी की तरफ रवाना हो जाते हैं।

कुछ ही दिन के बाद धनी और निर्धन के मकान का भेद न करते हुए शिवगुप्त और मुनिगुप्त नाम के दो दिगम्बर मुनि चर्या के लिए श्रीदत्त के मकान के सामने से निकलते हैं। पड़ोस में ही एक गृहस्थ उनका पड़गाहन करके उन्हें विधिवत् आहार प्रदान करता है। आहार के अनंतर आँगन में उन्हें काष्ठासन पर विराजने की प्रार्थना करता है। मुनिराज कुछ क्षण के लिए बैठ जाते हैं। अड़ोस-पड़ोस के कई पुरुष व महिलाएँ तथा बालगोपाल लोग मुनियों के दर्शन हेतु उमड़ पड़ते हैं।

इसी बीच में तेलादि के बिना जिसका शरीर रुक्ष हो गया है व केश भी रुक्ष हो गये हैं, जिसने केवल दो वस्त्र धारण किये हुए हैं। सधवा के चिन्हस्वरूप मंगलसूत्र, चूड़ी आदि बहुत थोड़े से अलंकार धारण किये हुए हैं, पति और पुत्री के वियोग से जिसका शरीर खेदखिन्न हो रहा है, जो गर्भ के भार से पीड़ित है और दूसरे के घर में रहने से जिसके मुख की शोभा नष्ट हो गई है। घर के आँगन में बैठी हुई धनश्री को देखकर मुनिगुप्त मुनिराज ने कहा–

"ओह! इसकी कोख में कोई बड़ा पापी पुरुष आया हुआ जान पड़ता है कि जिसके गर्भ में आने मात्र से इस बेचारी की यह दुर्दशा हो रही है।"

इतना सुनते ही शिवगुप्त नामक बड़े मुनिराज कहने लगे–

"मुनिगुप्त! ऐसा मत कहो, यद्यपि यह सेठानी कुछ दिन तक इस तरह पराये घर में रहेगी, फिर भी इसका पुत्र जिनधर्म का धुरन्धर होगा। समस्त वैश्यों का स्वामी और अपार सम्पत्तिशाली राजश्रेष्ठी होगा तथा राजा विश्वंभर की पुत्री का वरण करेगा।"

आँगन के सामने अपने मकान के बाहर चबूतरे पर खड़े हुए श्रीदत्त ने यह बात सुन ली। 'दिगम्बर मुनियों का कथन झूठा नहीं होता' ऐसा सोचकर श्रीदत्त सेठ विषधर सर्प की तरह अपने मन में दुष्ट संकल्प करने लगे। 'ओह! इसका पुत्र अपने आश्रय को ही खाने वाला होगा। इसीलिए इसका उपाय अभी से ही सोच लेना चाहिए। जड़ को ही समाप्त कर देना उचित होगा। पहले से ही उसने किसी वृद्धा धाय को सब समझा-बुझा दिया।'

जब धनश्री ने पुत्ररत्न को जन्म दिया उस समय वह प्रसूति की पीड़ा से मूर्च्छित हो गई, तब धाय ने उस बालक को शीघ्र ही ले जाकर सेठ श्रीदत्त को सौंप दिया और यहाँ घर में हल्ला मचा दिया कि बालक मरा हुआ ही पैदा हुआ है। धनश्री सेठानी जब सचेत होती है, 'बालक मरा हुआ ही हुआ था' ऐसा सुनती है, फिर भी पुत्र के मुख को देखने के लिए व्याकुल हो उठती है परन्तु कुछ वृद्धा स्त्रियाँ आकर

समझाती हैं–

"पुत्री! तू मृतक पुत्र को देखकर उसका दुःख झेल नहीं सकती थी, इसीलिए तेरे भाई श्रीदत्त ने उसे जल्दी ही यहाँ से हटवा दिया है। तू अब धैर्य धारण कर, संकट का समय आता है, चला जाता है।"

पति और पुत्री के वियोग में भी वह बेचारी धनश्री भावी संतान की आशा से जैसे-तैसे प्राणों को धारण कर रही थी। अब उसके धैर्य का बाँध टूट गया, फूट-फूट कर रोने लगी–

"हे दुर्दैव! तूने मुझे पुत्र का मुख नहीं देखने दिया। हाय! मैं मृतक पुत्र को भी देख तो लेती। हे पतिदेव! आपने जाने के बाद आज तक मेरी खबर नहीं ली, माँ के वियोग में सुबन्धु कन्या कैसे रह सकती है? कौन जाने अब पतिदेव का दर्शन कब होगा?"

बेचारी धनश्री बार-बार रुदन करती है और मूर्च्छित हो जाती है। पुनः सचेत हो जाती है। कुछ दिन बाद धीरे-धीरे तत्त्वज्ञान के बल से अपने आपको शांत करती है और पूर्ववत् दिवस व्यतीत करने लगती है।

(3)

इतना सुंदर बालक! माता का स्नेह इसके ऊपर होने के पहले ही इसका गुप्त वध करा देना ही श्रेष्ठ है। ओह! यह मेरे कुल का क्षय करने वाला है, मेरे राजश्रेष्ठी पद को ग्रहण करने वाला है। इसी बीच में उस एकांत कमरे में

चांडाल प्रवेश करता है–

"कहिये सेठजी! क्या आज्ञा है?"

सोने के सिक्कों से भरी हुई थैलियों की तरफ इशारा करते हुए सेठजी बोलते हैं–

"हाँ, यह लो और इस बालक को ले जावो। हाँ, देखो! बहुत ही सफाई व चतुराई से काम करना है कि जिससे मेरी उज्ज्वल कीर्ति पर कलंक न लग जाए। बस, इसका काम तमाम कर दो।"

"जो आज्ञा अन्नदाता की" ऐसा कहकर वह चांडाल सोने की मोहरों से भरी हुई थैलियाँ उठाकर उनकी गठरी बाँधकर कंधे पर रखता है और कपड़े से लपेट कर बालक को बगल में दबाकर चल देता है। धन संपत्ति को अपने घर में रखकर और हाथ में छुरा लेकर गाँव के बाहर निर्जन वन में पहुँचता है। कपड़े में से बालक को निकाल कर नीचे पृथ्वी पर सुलाकर उसे एकटक देख रहा है–

"यह गुलाब के फूल जैसा कोमल बालक, तत्काल का जन्मा हुआ बेचारा। इसने सेठजी का क्या बिगाड़ा है? पता नहीं सेठजी इसे क्यों मरवा रहे हैं? जो भी हो, अब तो इसका जीवन और मरण अपने ऊपर ही निर्भर है। "सोचते-सोचते उस चांडाल का हृदय करुणा रस से एकदम आर्द्र हो उठता है। ".....छि, छि, ऐसे कोमल और सर्वगुण सुंदर बालक को मारना महापाप है। छोड़ो, इसे यहीं घोर जंगल में छोड़कर अपन चलें, इसके भाग्य में जो होना होगा, सो होगा। अरे!

जंगल में न जाने कितने क्रूर प्राणी विचरण कर रहे हैं। कोई न कोई अपने आप ही इसको अपना आहार बना लेगा। अपन अपने हाथ से इस निर्दोष बालक पर छुरा क्यों चलायें?''

वह क्रूरकर्मा चांडाल जब उस बालक को वहीं जंगल में छोड़कर चला जाता है, तब उसी क्षण श्रीदत्त का छोटा बहनोई इंद्रदत्त व्यापार हेतु जाते हुए उस जंगल के पास के गाँव में पहुँचता है। वहाँ पर अनायास ग्वालों के बालक चर्चा कर रहे थे–

''अरे, चल, चल तुझे दिखाऊँ। एक छोटा सा बहुत ही सुंदर बालक जंगल में एक पत्थर पर सोया हुआ है।''

''तुझे किसने बताया?''

''अभी-अभी मेरा छोटा भैया देखकर आया है। जल्दी आ, नहीं तो उसे कोई उठा ले जायेगा।''

सेठ इंद्रदत्त बच्चों के पीछे-पीछे उस निर्जन वन के एकांत स्थान में पहुँचते हैं और देखते हैं कि ग्वालों के बच्चों ने वहाँ मेला बना रखा है। बहुत से गाय के बछड़े भी वहीं उछल-कूद मचा रहे हैं। उस समय वह बालक ऐसा दिख रहा है मानो अनेक चंद्रकांत मणियों के मध्य कोई एक पद्मरागमणि का खजाना ही हो। सेठजी जल्दी से बालक को अपनी गोद में उठा लेते हैं और व्यापार में एक अपूर्व लाभ हो गया, ऐसा सोचते हुए हर्षितचित्त अपने घर पहुँच जाते हैं–

''राधे! आप पुत्रहीन थीं, मानो यह आपका दुःख विधाता से नहीं देखा गया। इसीलिए उसने यह कुलतिलक पुत्र अपने

को दिया है। लो इसे लेकर अपने वन्ध्यापन के कलंक को दूर करो।''

राधा सेठानी पुत्र को गोद में लेती हैं तो उनके सारे शरीर में हर्ष के मारे रोमांच हो आता है। 'आज मैं धन्य हो गई, मैं पुत्रवती हो गई।' ऐसा सोचते हुए वह खुशी से फूली नहीं समाती है।

सेठजी एक कुशल वृद्धा धाय को बुलाकर उसे राधा की सेवा में नियुक्त कर देते हैं। सेठानी के गूढ़ गर्भ था, आज पुत्र का जन्म हुआ है। यह वार्ता कर्णोपकर्णी चारों तरफ फैल जाती है। पुत्र जन्म का बहुत ही बड़ा उत्सव मनाया जा रहा है। सेठजी के मित्रगण बधाई देने आये हैं। याचकजन आते चले जा रहे हैं और सेठजी का खजांची खुले हाथ धन-संपत्ति बाँट रहा है। श्रीदत्त सेठ के पास भी समाचार पहुँचता है कि तुम्हारी छोटी बहन के पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है, श्रीदत्तजी उसी दिन वहाँ पहुँचते हैं और भानजे के जन्म-उत्सव में भाग लेते हैं। उनके मन में कुछ आशंका घर कर जाती है।

''कहीं चांडाल ने मुझे धोखा तो नहीं दिया?'' फिर वे बहनोई से कहते हैं–

बड़े ही सौभाग्य से मेरी बहन के पुत्ररत्न का जन्म हुआ है, अतः इस भानजे का लालन-पालन मेरे घर में ही होना चाहिए।''

''अच्छी बात है, मुझे कोई आपत्ति नहीं।'' ऐसा कहकर अपने साले श्रीदत्त के साथ इंद्रदत्त ने अपनी पत्नी राधा को

पुत्र सहित भेज दिया। घर में आते ही श्रीदत्त ने विचार किया कि इस बालक का काम भी शीघ्र ही कर देना चाहिये। विलम्ब करना ठीक नहीं, अतः उसने पुनः एक बधिक को बुलाकर और पहले से भी अधिक धन उसे देकर बोला–

"देख बहुत ही चतुराई से काम करना है, ले शीघ्र ही इस बालक को ले जा।"

बधिक धन को सुरक्षित स्थान में रखकर और कपड़े से छिपाकर बालक को लिये नदी के किनारे पहुँचता है, किन्तु जैसे बालक का पुण्य ही उसे मारने से रोक रहा हो, वह कुछ एक क्षण एकटक ही देखता है। उसके हृदय में भी करुणा का स्रोत उमड़ पड़ता है। वह क्रूर चाण्डाल भी बहुत से वृक्षों के झुंड में उस बालक को रखकर उसे उसी के भाग्य भरोसे छोड़कर अपने घर चला जाता है।

निकट के गाँव से बहुत-सी गायें उधर चरने आ रही हैं। वे सब इस बालक के पुण्य प्रताप से खिंची हुई इधर बढ़ती चली आ रही हैं। गायें इस बालक को देखकर रंभाने लगीं जैसे मानो उन्हें अपना ही बछड़ा मिल गया हो। कोई एक गाय बालक को पास खड़ी हो गई तो उसके थनों से दूध झरने लगा। बालक दूध पी रहा है और आनंद से किलकारियाँ भर रहा है। इस आश्चर्यकारी दृश्य को देखकर ग्वाले दौड़े-दौड़े अपने मालिक गोविन्द के पास पहुँचकर सारा समाचार सुना देते हैं। गोविन्द कुछ ऊहापोह किये बिना वहाँ पहुँचकर उस फूल जैसे सुकोमल बालक को देखता है। पुत्र स्नेह से विभोर हो उठता है। पुत्र को गोद में उठाते ही उसका सारा

शरीर रोमांचित हो उठता है। वह आनंदित होता हुआ घर आकर अपनी स्त्री सुनंदा को पुत्र को देते हुए कहता है–

"सुनंदे! परमात्मा ने आज प्रसन्न होकर तेरे लिए यह कुलदीपक भेजा है।"

दोनों हाथ फैलाकर सुनंदा उस सुंदर बालक को ले लेती है और छाती से चिपका लेती है। सात दिन बाद उस बालक का 'धनकीर्ति' यह नामकरण किया जाता है। बालक पालने में झूलता हुआ माता-पिता को हर्षित करता ही रहता है किन्तु गोविन्द के घर में हमेशा पड़ोस की महिलाओं व बच्चों का मेला ही लगा रहता है। उस बालक को देख-देखकर खिला-खिलाकर दूध पिला-पिलाकर व हँसा-हँसाकर भी कोई तृप्त नहीं हो पाता है। सबके लिए वह कौतुक का स्थान बना हुआ है। कुछ दिनों में वह जमीन पर सरकने लगा। धीरे-धीरे वह लड़खड़ाते पगों से घर से बाहर निकल कर गौशाला में पहुँचकर गाय के बछड़ों में खेलने लगा। रूप में कामदेव के समान सुंदर, कांति में चंद्रमा की समानता करता हुआ और अपने तेज से सूर्य के सदृश होता हुआ यह बालक दिन-पर-दिन बढ़ने लगा। उसकी वृद्धि के साथ-साथ ही उसके गुण भी बढ़ते चले जा रहे हैं। किशोर अवस्था को प्राप्त हुआ बालक गोपालों के बालकों के साथ खेलता हुआ सभी के मध्य प्रधान रहता है। इससे आबाल-गोपाल भी यह कल्पना किया करते है कि यह कोई महिमाशाली प्रभावी बालक है। गोविन्दराज और सुनंदा तो उसके अद्भुत-प्रभाव को देख-देखकर फूले नहीं समाते हैं। हमेशा अपने भाग्य की

सराहना करते रहते हैं। समय अपनी तीव्र गति से बढ़ता चला जा रहा है।

(4)

"आज क्या है?"

"क्यों बेटा! तू ऐसा क्यों पूछा रहा है?"

"आज माँ ने चारों तरफ खूब सफाई कर रखी है। सब कोई अच्छे-अच्छे कपड़े पहने हुए है। माँ ने मुझे भी नये-नये कपड़े पहनाये हैं। पिताजी! बता दो आज कौन-सा त्यौहार है?"

"बेटा! आज कुछ भी त्यौहार नहीं है। फिर भी अपने मालिक यहाँ आये हुए हैं। तूने देखा नहीं क्या? वो सामने के कमरे में ठहरे हुए हैं।"

"वे क्यों आये हैं?"

"वे घी लेने आये हैं। बेटा! वे बहुत ही बड़े व्यापारी हैं, उनके यहाँ लाखों रुपयों का घी बिकता है। वह सब हम लोगों के यहीं से तो जाता है। इसीलिए आज वे अपने यहाँ सौदा करने आये हैं। ये विशाला नगरी के राजश्रेष्ठी हैं। बहुत नामी और धर्मात्मा व्यक्ति हैं।"

कुछ क्षण बाद सेठ श्रीदत्त गोविन्द से घी का भाव समझ रहे हैं। इसी बीच यह धनकीर्ति वहाँ आ जाता है। सेठजी उस बालक के रूप-लावण्य को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। आखिर मन में अनेक संकल्प-विकल्प करते हुए पूछ बैठते हैं–

"गोविन्द! यह बालक किसका है?"

"आपका ही है सरकार!"

"सच, क्या यह तुम्हारे घर जन्मा है?"

"परमेश्वर ने हमें यह प्रसाद में दिया है।"

"तभी तो मैं पूछ रहा हूँ। गोविन्द! तुम सही-सही इसका वृत्तान्त कहो तो।"

"हाँ, हाँ धनकीर्ति! तू जा अपनी माँ से कह दे कि आज सेठजी के लिए दही का रायता, बढ़िया चावल की खीर, मक्खन और अच्छी-अच्छी चीजें बना ले।" ऐसा कहकर गोविन्द धनकीर्ति को वहाँ से हटा देता है। पुनः अपने विश्वसनीय सेठजी से कहना शुरू करता है–

"सेठजी! आज से लगभग सोलह वर्ष पूर्व की बात है तमाम सारे ग्वाले दौड़े-दौड़े आये और बोले-'मालिक! नदी के किनारे वृक्षों के झुरमुट में एक गोरा-गोरा बालक सीधा लेटा हुआ है और अपनी सब गायें एक-एक करके उसके पास जाती हैं। उनके खड़े होते ही उनके थनों से दूध झरने लगता है। उसको बालक बड़े मजे से पी रहा है। मैंने सोचा, क्या भगवान श्रीकृष्ण ही यहाँ अवतार लेकर आ गये हैं। मैं जल्दी से वहाँ पहुँचा और उस बालक को उठा लाया। जब से वह बालक मुझको मिला है मेरी सम्पत्ति दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती ही चली जा रही है। ईश्वर हमें छप्पर फाड़ कर लक्ष्मी दे रहा है। मैं उस दिन से अपने को बहुत ही भाग्यशाली समझता हूँ।"

"सच में तेरे भाग्य देवता तुझ पर बहुत प्रसन्न हैं?"

"हाँ अन्नदाता!"

घी का सौदा हो जाता है, पुनः सेठजी बोल पड़ते हैं– "गोविन्द! अभी मुझे यहाँ काम बहुत है और मेरा एक घर के लिए जरूरी काम दिमाग में आ गया है।"

"आज्ञा दीजिये।"

"इस धनकीर्ति के हाथ कुछ जरूरी समाचार अपने लड़के को भेजना है।"

"आपके आदेश को भला मैं कैसे टाल सकता हूँ? बेटा धनकीर्ति!"

अंदर से आवाज आती है–

"हाँ पिताजी!"

"यहाँ आओ।"

धनकीर्ति आकर हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है–

"देखो बेटा! ये सेठजी तुम्हें अपने घर कुछ समाचार देकर भेज रहे हैं। हाँ, तुम ठीक से जाना। देखो, इनसे सब रास्ता समझ लो।"

सेठजी एक पत्र लिखकर अपने हाथ से उसके गले में बंधी हुई सोने की कंठी में बाँध देते हैं और उसे जाने का मार्ग समझा देते हैं। अंदर से सुनंदा की आवाज आती है–

"बेटे को खाना खिलाकर ही भेजना, यह अभी भूखा है।"

"अरे, क्यों चिंता करती हो? सेठजी का काम जल्दी का है, वहीं खाना खा लेगा, जाने दो।"

धनकीर्ति पिताजी और सेठजी को प्रणाम कर उनकी आज्ञा के अनुसार वहाँ से चल पड़ता है। घर के बाहर निकलने के बाद सुनंदा दौड़ी-दौड़ी जाकर सकोरे में दही भात लिये उसे खिला देती है। आगे बढ़ते ही सामने से ग्वालिनियाँ दही के मटके सिर पर रखे हुए मिल जाती हैं और गाँव के बाहर निकलते ही सामने मोर नाचते दिखाई देते हैं। धनकीर्ति कौतुक से मोर को देखते हुए उज्जयिनी नगरी की तरफ चल देता है। नगर के पास बगीचे में पहुँचकर बहुत ही थक जाने से वहीं आम के वृक्ष के नीचे सो जाता है।

इसी समय नगरी की एक वेश्या की अनंगसेना नामकी कन्या यहाँ पुष्पों का संग्रह करने के लिए आती है। वस्त्रालंकारों से सुसज्जित अतिशय सुंदरी वह कन्या इधर-उधर उस बगीचे की शोभा देख रही है। अकस्मात् उसकी दृष्टि उस युवक पर पड़ती है। पूर्व जन्म के संस्कारवश वह उसे एकटक से देख रही है। मालूम पड़ता है कि यह मेरा कोई परमोपकारी बंधु है। देखते-देखते अनंगसेना की दृष्टि उसके गले में बँधे हुए पत्र पर पड़ी। उसने शीघ्र ही उसे खोल लिया और बड़ी आत्मीयता से पढ़ने लगी। उसमें लिखा था–

"प्रिय पुत्र महाबल! यह लड़का हमारे वंश का विनाश करने के लिए अग्नि के समान है। इसीलिए या तो इसे विष दे देना या मूसल से मार डालना। यह कार्य अतिशीघ्र कर देना।"

"ओह! यह दुष्ट व्यापारी कितना धूर्त है।" ऐसा सोचकर

उस अनंगसेना ने उस पत्र के लेख को मिटाया और अपनी आँख में लगे हुए कज्जल को लेकर लताओं की नयी कोपली के रस में भिगोया पुनः तृण के द्वारा उस कज्जल से उसी पत्र पर दूसरा लेख लिख दिया–

"यदि सेठानी! तुम मेरे वचनों को मानती हो और यदि पुत्र महाबल! तुम मुझे अपना पिता मानते हो, तो तुम लोग मेरे आने की अपेक्षा न करके शीघ्र ही अग्नि की साक्षीपूर्वक और दान सम्मान आदि पूर्वक अपनी बहन श्रीमती का इसके साथ विवाह कर दो। मैंने इसकी सात पीढ़ियों तक की शुद्धि समझ ली है। इसमें किसी प्रकार का संकोच मत करो और अतिशीघ्र ही यह काम पूर्ण कर दो।"

वेश्या की कन्या अनंगसेना ने ऐसा पत्र लिखकर पूर्ववत् उसके गले में बाँध दिया और आप बेला, चमेली फूलों को चुनने में लग गई। इधर नींद पूरी करके धनकीर्ति उठता है, आलस्य को दूर कर पुनः उज्जयिनी में प्रवेश करता है। उसके रूप सौन्दर्य को देखकर दही बेचने वाली गोपाल कन्याएँ बरबस ही मटके को सिर पर रखे हुए उसके सम्मुख आ जाती हैं। मानो उसका स्वागत ही कर रही हों। वह इन बातों की तरफ लक्ष्य न देता हुआ श्रीदत्त के संकेत के अनुसार उनके मकान को पहचान कर उसमें प्रवेश करता है। कन्या श्रीमती आगंतुक मेहमान की सूचना माँ को दे देती है। माता उसका यथोचित सत्कार करके उसे अच्छे आसन पर बिठाती है। पति के द्वारा दिये हुए पत्र को लेकर पढ़ती है, गद्गद होकर पुत्र महाबल को बुलाकर कहती है।

"बेटा! कन्यायें युवती होने पर माता-पिता के लिए चिंता का विषय बन जाती हैं किन्तु अपन लोग बहुत ही पुण्यशाली हैं। देखो ना! तुम्हारे पिता को अनायास ही कितना सुंदर वर मिल गया है और उन्होंने उसे घर पर ही भेज दिया है।" पत्र उठाकर पुत्र के हाथ में दे देती है। पुत्र महाबल भी हर्ष से रोमांचित होकर बोल उठता है–

"माता! यह युवक भी कितना सुंदर है, मालूम पड़ता है साक्षात् कामदेव की मूर्ति ही हो। अच्छा तो अब पिताजी की आज्ञानुसार अपने को विलम्ब नहीं करना है।"

महाबल शीघ्र ही खजांची को बुलाकर सम्पत्ति का कोठार खुलवा देता है और बड़े ही उत्सवपूर्वक विवाह की तैयारियाँ शुरू कर देता है। ज्योतिषी के द्वारा बताये हुए मुहूर्त में तमाम रिश्तेदारों के समक्ष, तमाम समाज के समक्ष में श्रीमती का विवाह धनकीर्ति के साथ सम्पन्न हो जाता है। सेठानी योग्य जमाई को पाकर, महाबल योग्य बहनोई को पाकर फूले नहीं समाते हैं। चारों तरफ का वातावरण मंगलमयी हो रहा है। चारों तरफ यही चर्चा हो रही है–

"भाई! श्रीदत्त सेठजी तो घी खरीदने गये थे उन्हें ऐसा नररत्न कहाँ मिल गया?"

"अरे भाई! भाग्य दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु को सुलभ कर देता है। सेठजी बड़े भाग्यशाली हैं।"

"हाँ, हाँ, उस श्रीमती का भाग्य तो देखो! जिसे सूर्य के समान तेजस्वी पति मिला है।"

"बहन! श्रीमती ने पूर्वजन्म में बहुत ही पुण्य कमाया

होगा।''

''हाँ बहन! इसमें क्या शक है, बिना पुण्य के ऐसा गुणों का खजाना पति मिलना संभव नहीं है।''

उधर श्रीदत्त सेठ से सोचा एक-दो दिन टालकर ही घर पहुँचना उचित होगा क्योंकि उस धनकीर्ति के आकस्मिक मरने की दुर्घटना से पता नहीं कैसा वातावरण चलरहा हो। जब सेठ उज्जयिनी के निकट आते हैं तो बाहर से उन्हें खुशखबरी सुनाने वाले अनेक इष्ट मित्र मिल जाते हैं–

''मित्र! तुम बड़े भाग्यशाली हो, अनायास ही तुम्हें ऐसा सर्वगुण सम्पन्न जमाई मिल गया।''

सेठजी हक्के-बक्के रह जाते हैं। मन में सोचते हैं यह क्या हुआ, यदि कुछ आश्चर्य व्यक्त करता हूँ तो पता नहीं क्या-क्या आशंकायें लोगों में हो जायेंगी। जल्दी-जल्दी घर आकर सारा मामला देखते हैं अपना लिखा पत्र पढ़ते हैं। माथा धुनकर चुपचाप रह जाते हैं।

(5)

श्रीदत्त सेठ एकान्त में बैठे हुए चिन्ता सागर में डूब रहे हैं। अनायास नौकर से बोले–नए मेहमान धनकीर्ति को यहाँ भेज दो। धनकीर्ति आकर यथायोग्य विनय करके बैठ जाता है। सेठजी कहते हैं–

''वत्स! मेरे कुल की ऐसी रीति है कि जिस कन्या का नया विवाह होता है उसका पति कंकण खुलने के पहले ही रात्रि के समय कुसुम्भे रंग से रंगे हुए वस्त्र पहन कर उड़द के

बने हुए मोर और कौवे की बलि को रक्तवस्त्र से ढककर ले जाकर चंडी देवी के मंदिर में चढ़ाता है अतः तुम्हें भी ऐसा करना होगा।''

''जैसी आज्ञा।'' कहकर धनकीर्ति कुलदेवता को अर्पित करने की सामग्री लेकर घर से चल पड़ता है। सामने से आता हुआ साला महाबल उससे पूछ बैठता है–

''धनकीर्ति ! अंधेरी रात में तुम अकेले कहाँ जा रहे हो?''

''मामा की आज्ञा से बलि देने के लिए चंडी देवी के मंदिर में जा रहा हूँ।''

''यदि ऐसी बात है तो तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नहीं है। चूँकि नगर के लोग रात्रि में इस मार्ग में जाना अच्छा नहीं समझते हैं अतः घर को लौट जाओ। मुझे यह सामान दे दो, देवी जी को भेंट समर्पित करने के लिए मैं चला जाऊँगा। यदि पिताजी रुष्ट होयेंगे तो मैं समझाकर उनके रोष को दूर कर दूँगा।''

''जैसी आपकी इच्छा।'' ऐसा कहकर धनकीर्ति ने उसके हाथ में बलि का सामान दे दिया और आप घर को वापस लौट गया। इधर महाबल यमराज के पेट में समा गया। सेठजी प्रातःकाल धनकीर्ति को देखकर अवाक् रह गये, चूँकि उन्होंने वहाँ पर मारने वाले चंडाल को बैठा दिया था और कह दिया था कि जो रात्रि में बलि चढ़ाने आये उसे मार डालना, अतः उन्होंने घबड़ाकर पूछा—

''क्या रात्रि में चंडी देवी के मंदिर में गये थे?''

मैं जा रहा था किन्तु मध्य में साले साहब मिल गये

उन्होंने वापस कर दिया और आप मेरे हाथ से बलि का सामान लेकर चले गये। सेठजी घबड़ाये हुए जल्दी-जल्दी दुर्गा मंदिर की तरफ चल पड़े, वहाँ देखते हैं प्रिय पुत्र महाबल का मस्तक और धड़ अलग-अलग पड़ा है। शोक से व्याकुल हो गये–जैसे-तैसे घर तक आये। एक कमरे में पहुँचकर धर्मपत्नी विशाखा को बुलाया और उसको पुत्र मरण का समाचार सुनाते हुए मूर्च्छित हो गये। विशाखा स्वयं पुत्र मरण की आकस्मिक दुर्घटना से वज्र से ताड़ित वृक्ष के समान पृथ्वी पर गिर पड़ी। कुछ क्षण बाद धाय के द्वारा शीतोपचार किये जाने पर वे दम्पत्ति कुछ शांत हुए और पुत्र की अंतिम क्रिया की।

श्रीदत्त ने विशाखा को एकांत में आद्योपांत सारी घटनायें सुना दीं। वे कहने लगे–

''आश्चर्य है कि इसका भाग्य कितना बलवान है। जन्मते ही मैंने इसे मरवा डालना चाहा– आज चारों बार मैं इसे जीवित देख रहा हूँ। अब यद्यपि इसके मरने में मेरी लाड़ली पुत्री श्रीमती विधवा हो जायेगी, वह जीवन भर दुःख के आँसू गिरायेगी जो कि अपने लिए सहन करना कठिन प्रतीत होता है फिर भी इसे मारे बगैर मुझे चैन नहीं पड़ सकती। कुछ भी हो, इसे मारने का उपाय सोचना ही होगा। चूँकि यह अभागा मेरे वंश का अनिष्ट करने वाला है।''

विशाखा बहुत देर तक अनेक प्रकार की चिंताओं में डूबती-उतरती रही। अंत में पति की आज्ञा अथवा यमराज की प्रेरणा से ही मानो कुछ निर्णय करके कहा–

''अविचार के कारण आपके सारे उपाय व्यर्थ हो गये हैं अतः अब आप चुप बैठ जाइये। आपकी सब इच्छायें पूर्ण होंगी।''

दूसरे दिन सेठानी दो तरह के लड्डू बनाती है पुनः पुत्री को बुलाकर कहती है–

''बेटी! देख जो ये सफेद कमल की तरह स्वच्छ लड्डू हैं, इन्हें अपने पति को खिला देना और जो ये काले-काले उड़द के समान लड्डू हैं, इन्हें अपने पिताजी को दे देना'' इतना कहकर सेठानी नदी में स्नान करने चली गई। इधर पिता और पति दोनों नाश्ते के लिए आकर बैठे। श्रीमती सोचती है जो भी वस्तु तीन जगत् में शुभ हो, वह अपने पिता के लिए देना योग्य है, पति के लिए नहीं, चूँकि वह तो राग का कारण है। उसे माता की दुश्चेष्टा का कुछ पता नहीं, अतः उसने उल्टा ही कर दिया। पिता के सामने सफेद लड्डू परोस दिये और पति के सामने काले लड्डू रख दिये। दोनों ही बिना किसी भेदभाव के नाश्ता कर रहे हैं। किन्तु पिता के पेट में लड्डू पहुँचते ही जहर ने अपना काम शुरू कर दिया। वे व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गये। श्रीमती घबड़ायी–

''यह क्या?''

इतने ही में विशाखा सेठानी वापस आ जाती है तो देखती है कि पतिदेव सदा-सदा के लिए मूर्च्छित हो चुके हैं। वह छाती कूट-कूट कर रोती है और अंत में पुत्री से कहती है–

''बेटी! महामुनियों का कथन झूठा कैसे हो सकता है? तेरे पिता ने और मैंने अपने वंश की रक्षा करने की बुद्धि से

ही वंश का नाश करने वाला यह गड्ढाखोदा था। अब रोने से क्या होता है? 'कल्पवृक्ष' के समान कल्पलता के समान तू अपने इस दैवरक्षित पति के साथ कल्पकाल तक ऐश्वर्य और इंद्रिय सुख को भोग।'' ऐसा आशीर्वाद देकर वह भी जहरीला लड्डू खा लेती है और पतिदेव की अनुगामिनी हो जाती है।

श्रीमती, माता के द्वारा थोड़े में कहे गये रहस्य को कुछ समझ नहीं पाती है और आकस्मिक बड़े भाई, पिता और माता के वियोग के शोक से विह्वल हो जाती है। शनैः शनैः पतिदेव के द्वारा दी गई सान्त्वना और पति के प्रेमपूर्ण व्यवहार से दुःख को भूलती जाती है और सुख में निमग्न हो जाती है। सो सच ही है क्योंकि समय धीरे-धीरे अपने आप ही इन नव-दम्पत्ति को इंद्रिय सुखों में रमा देता है।

सास-श्वसुर के चल बसने पर धनकीर्ति स्वयमेव सेठजी के स्थान को प्राप्त करके उज्जयिनी नगरी में वैश्यों का स्वामी कहलाता है तथा उसके अपने पुण्य के प्रभाव से उसकी सम्पत्ति दिन-दूनी-रात-चौगुनी बढ़ती चली जा रही है।

(6)

महाराज विश्वम्भर अपनी सभा में बैठे हुए हैं, कुछ मंत्रीगण आस-पास में बैठे हैं। राजा कुछ विचार-विमर्श में निमग्न हैं–

''मंत्रियों! यह धनकीर्ति युवक समस्त वैश्यों का शिरोमणि है। क्या यह बात सच है?''

''हाँ, महाराज! कुछ ही दिन हुए जब कि सेठ श्रीदत्त ने

इसके साथ अपनी पुत्री का विवाह किया। अनंतर किसी दुर्घटनावश वे सेठ, उनकी पत्नी और उनके पुत्र महाबल तीनों ही चल बसे। तब से उनकी सम्पूर्ण चल-अचल सम्पत्ति के ये ही तो मालिक हैं।''

''इसका रूप-सौन्दर्य देखकर तो मैं आज बहुत ही आश्चर्य में पड़ गया। मानो यह साक्षात् कामदेव का ही अवतार है।''

''महाराज! रूप के साथ-साथ इसके गुणों की भी सर्वत्र कीर्ति फैल रही है। यह परम सात्त्विक है, जैनधर्म को पालने वाला है, दानशील है और दया, परोपकार आदि गुणों का भंडार है।''

''मैं तो इसे अपनी पुत्री के लिए सर्वथा योग्य वर समझ रहा हूँ। कहिये, आप लोगों की क्या राय है?''

''इससे अच्छा वर और कौन होगा? महाराज! आपने बहुत ही अच्छा सोचा है।''

''तो अब विलम्ब करना ठीक नहीं है। आप ही इस विषय में कुशल हैं।''

''जैसी आज्ञा!'' मंत्री धनकीर्ति भी अपनी भार्या श्रीमती से स्वीकृति प्राप्त कर मंत्री को स्वीकृति प्रदान करते हैं बहुत ही महोत्सव के साथ राजा की पुत्री का विवाह धनकीर्ति के साथ सम्पन्न हो जाता है। राजा विश्वम्भर धनकीर्ति को अनेक रत्न समूह, हाथी, घोड़े, रथ आदि वस्तुएँ देते हैं तथा महामहोत्सव के साथ-साथ उसे राजश्रेष्ठी पद पर स्थापित कर देते हैं। धीरे-धीरे सर्वत्र यह चर्चा फैल जाती है कि यह

धनकीर्ति राजश्रेष्ठी सेठ गुणपाल के सुपुत्र हैं। ये किसी दुर्घटनावश गोविन्द नामक गोपाल के स्वामी के यहाँ पले हुए हैं किन्तु धनश्री की कुक्षि से जन्मे हुए हैं।

कर्णोपकर्णी यह चर्चा कौशाम्बी तक पहुँच जाती है। तब गुणपाल सेठ अपनी पत्नी से विचार-विमर्श करके वहाँ से चलने का निर्णय कर लेते हैं। जब श्रेष्ठी धनकीर्ति को पिता के आगमन का समाचार मिलता है तब वह तत्क्षण ही आगे जाकर आधे मार्ग में ही पहुँचकर जन्म के पहले ही जिनसे वियुक्त हो चुका था ऐसे पिता के चरणों में नमस्कार कर जन्म देकर जिसने मुख भी नहीं देखा था ऐसी माता के चरणों में नमस्कार करता है। माता-पिता और पुत्र का यह मिलन सभी लोगों को अतिशय रोमांचित कर देता है।

महाराज विश्वम्भर इस समाचार को सुनते ही भारी सेना और वैभव के साथ गाँव के बाहर पहुँचकर अपने समधी का स्वागत करते हैं पुनः उत्सव के साथ शहर में प्रवेश कराते हैं। सर्वत्र धनकीर्ति के यश, गुण और पुण्य की चर्चा व्याप्त हो जाती है।

किसी समय धनकीर्ति श्रेष्ठी अपने वृद्ध पिता के साथ सुखपूर्वक महल में बैठे हुए हैं। अनायास द्वारपाल आकर कहता है–

"सेठजी! कोई एक महिला बाहर खड़ी हुई है वह आपसे मिलना चाहती है।"

"अंदर आने दो।"

अनंगसेना अंदर आकर वृद्ध पिता और श्रेष्ठी धनकीर्ति

को नमस्कार करके यथोचित स्थान पर बैठ जाती है। पुनः अपना परिचय देते हुए कहती है–

"महाभाग! मैं वेश्या की पुत्री अनंगसेना हूँ। एक दिन आप इस उज्जयिनी नगरी के बाहर आम के बगीचे में सोये हुए थे। उस समय मैं उद्यान में फूल चुनने के लिए पहुँची। वहाँ आपको देखकर हृदय में स्नेह उमड़ आया। ऐसा लगा कि जैसे आप मेरे पूर्व जन्म में कोई परमोपकारी बंधु हैं। मैंने आपके गले की कंठी में एक पत्र बँधा हुआ देखा जिसमें कुछ आपके मारने के समाचार लिखे हुए थे। मैंने उन अक्षरों को मिटाकर और ऐसा लिख दिया। दिन पर दिन आपके अभ्युदय को सुनकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता होती है।"

अनंगसेना की बात को सुनकर पिता-पुत्र आश्चर्य से सहित हो एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। कुछ क्षण बाद माली आकर कहता है–

"स्वामिन्! तीन लोक में पूज्य महामहिमाशाली महामुनि नगर के बाहर उद्यान में पधारे हैं।"

"बहुत ही शुभ समाचार तुमने सुनाया है।" ऐसा कहकर और माली को यथायोग्य पुरस्कार देकर धनकीर्ति आदि सभी लोग उस उद्यान की दिशा में सात कदम आगे बढ़कर परोक्ष में ही मुनिराज की वंदना करते हैं। पश्चात् सकुटुम्ब दर्शन हेतु जाने की तैयारी करते हैं। वहाँ पहुँचकर विधिवत् गुरुदेव की तीन प्रदक्षिणा देकर सभी लोग वंदना करते हैं पुनः स्तुति और पूजा करके पास में बैठकर गुरु के मुखारविंद से धर्मोपदेश को सुनते हैं। अनंतर गुणपाल सेठ सविनय उन

यशोध्वज महामुनि से पूछते हैं–

"भगवन्! मेरे इस पुत्र धनकीर्ति के ऊपर जन्मकाल से अनेक दुष्ट उपसर्ग पाये और सबको जीतकर आजयह सकुशल महा अभ्युदय को भोग रहा है। सो इसने पूर्व में कौन-सा ऐसा पुण्य संचित किया था? आपके श्रीमुख से सुनना चाहता हूँ।"

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इन चार ज्ञान को धारण करने वाले वे मुनिराज अपने दिव्यज्ञान से उनके पूर्वभव को क्षणमात्र में जानकर कहते हैं–

सेठ गुणपाल! इसी अवन्ती देश के शिरीष नामक एक छोटे से ग्राम में एक मृगसेन धीवर रहता था। उसने एक बार मुनिराज के पास जाकर ऐसा नियम लिया कि 'हमारे जाल में पहले पहल जो मछली आयेगी, उसे नहीं मारूँगा।' उस दिन उसके जाल में एक ही मछली पाँच बार आई और उसने पाँचों बार उसे छोड़ दिया। उसी दिन अपनी पत्नी घण्टा के प्रकोप से वह बाहर सोया-सर्प डसने से मरकर यह धनश्री की कुक्षि में आया। उसकी भार्या घण्टा ने प्रातः यह कहा कि 'जो व्रत मेरे पति का था वही मेरा होवे' ऐसे भाव से मरकर यह श्रीदत्त की पुत्री श्रीमती हुई है और जिस मछली की इसने रक्षा की, वह मछली अपनी आयु पूरी कर मरकर यह अनंगसेना हुई है।

हे वैश्यशिरोमणि! अहिंसा व्रत का माहात्म्य देखो, मृगसेन धीवर ने पाँच बार जाल में आई हुई एक मछली को जीवनदान दिया था, उसी के पुण्य प्रभाव से इस भव में पाँच बार महान मृत्युकारी आपत्तियों से इसे स्वयं जीवनदान

मिला है। पहली बार श्रीदत्त सेठ ने जन्मते ही चांडाल को सौंपा, चांडाल ने जंगल में सुला दिया। इंद्रदत्त सेठ उठाकर ले गये, वहाँ भी श्रीदत्त सेठ पहुँचकर वहाँ से ले आये और पुनः चांडाल को सौंप दिया, फिर भी चांडाल ने नदी किनारे सुला दिया। पुनः गोविन्द गोपाल ने पालकर बड़ा किया। पुनरपि श्रीदत्त सेठ घी लेने गये थे वहाँ से इसे घर भेजा और पत्र में लिख दिया कि इसे मार डालो, किन्तु अनंगसेना ने पत्र को विपरीत कर दिया अतः यह श्रीमती का पति बन गया। पुनरपि चौथी बार सेठ ने चंडी के मंदिर में आटे के मोर आदि चढ़ाने भेजे, किन्तु बीच में महाबल ने उससे ले जाकर अपने प्राण गँवाये। पुनः पाँचवीं बार सेठानी ने विष के लड्डू बनाये, किन्तु कन्या की नासमझी से सेठजी स्वयं काल के गाल में समा गये। यह सारा काण्ड सेठजी ने इसीलिए किया कि गर्भवती धनश्री को देखकर एक मुनि ने ऐसा कहा था कि 'इसके गर्भ में आने वाला बालक इस सेठ के स्थान का स्वामी होकर राजा का जमाई होगा।' अतः इसको अपने कुल का विध्वंसक समझकर सेठ ने इसे मारना चाहा किन्तु स्वयं वे ही अपने द्वारा अपने पुत्र आदि का नाश कर स्वयं भी काल के गाल में चले गये।

इस पूर्वभव के वृत्तान्त को सुनकर धनकीर्ति को संसार से एकदम वैराग्य हो जाता है। वे माता-पिता और दोनों भार्याओं से स्वीकृति लेकर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। अन्य लोग भी धर्म प्रेम से सहित होकर यथायोग्य दीक्षा व श्रावक व्रत आदि ग्रहण कर लेते हैं। श्रीमती भी केशलोंच

करके आर्यिका की दीक्षा ग्रहण कर लेती है। अनंगसेना अपने योग्य व्रतों को ग्रहण कर लेती है।

वहाँ से उठकर बहुत से लोग आपस में चर्चा करने लगते हैं–"देखो ना! इसने पूर्वजन्म में एक मछली को पाँच बार जीवनदान दिया था उसके फलस्वरूप यह बचपन में ही उन कष्टों को पार कर गया कि जो देव के द्वारा ही दूर किये जा सकते थे।"

"सच ही है पूर्व पुण्य से जीवों के लिए काल-अग्नि भी जल हो जाती है, समुद्र भी स्थल बन जाता है, शत्रु भी मित्र के समान व्यवहार करने लगता है। हालाहल विष भी अमृत बन जाता है। सम्पूर्ण आपत्तियाँ भी संपत्तिरूप हो जाती हैं और तो क्या सारे विघ्न भयभीत होकर भाग जाते हैं। इसीलिए भाई! हमेशा पुण्य का संचय करना चाहिए।"

"हाँ देखा ना! पूर्व में पुण्य करने से इसे इस जन्म में कितना वैभव मिला था और इसे कैसा अच्छा सौन्दर्य मिला है।"

"सच में इसका तेज सूर्य की तरह है।"

"इसमें असाधारण गुण भरे हुए हैं।"

"गृहस्थावस्था में यह महादानी था, प्रियवादी था, सदा सत्कर्म करने वाला था, इसकी सभी के साथ मित्रता थी, यह स्वप्न में भी स्वजनों को कष्ट नहीं पहुँचाता था, समस्त शास्त्रों में प्रवीण था, जैनधर्म में धुरंधर विद्वान् गिना जाता था।"

"अब तो मुनि अवस्था में यह महाभाग विश्ववंद्य हो

गया है। अब तो रत्नत्रयरूपी अक्षयनिधि का स्वामी बन गया है।"

"ऐसे कोमल शरीर से यह घोर तपश्चरण कैसे करेगा?"

"बन्धु! जो महापुरुष होते हैं, वे घोर तपश्चरण व परीषह से घबराते नहीं हैं, प्रत्युत् इनके द्वारा ही कर्मों का विनाश करते हैं।"

अपनी शेष आयुपर्यंत उत्कृष्ट तप और ध्यान करके धनकीर्ति अंत में सल्लेखना से मरण करके सर्वार्थसिद्धि में अहमिंद्र हो जाते हैं। वहाँ की तेंतीस सागर की आयु पूरी करके मनुष्य लोक में मुनि होकर मोक्ष को प्राप्त करेंगे। चूँकि सर्वार्थसिद्धि में आने वाले जीव एक भवावतारी ही होते हैं, यह नियम है। इस कथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवनदान देने से बढ़कर और कोई दान व पुण्य इस विश्व में नहीं है।

।।समाप्त।।

आवरण परिचय

मृगसेन धीवर के जीव-बालक को चांडाल मारने के लिए लाया, किन्तु दयावश जंगल में नदी के किनारे छोड़ गया। तब उसकी रक्षा के लिए गाय के स्तनों से अपने आप दूध झरने लगा है और वह पी रहा है।